श्रीकृष्ण प्रेमी

एक राजा थे, उनकी रानी परम कृष्णानुरागी थी। रानी की कृष्णभक्ति सर्वविदित थी। रानी की कृष्णभक्ति की

साधना के क्रम में प्राय: ही राज्य में महाधूमधाम से पूजा उत्सवादि, नाम संकीर्तन और ब्राह्मण-वैष्णव सेवा चलती रहती थी। धर्म विषयक किसी भी कार्य में राजा ने रानी पर प्रतिबंध नहीं लगाया, किन्तु कभी उत्साह भी नहीं बढ़ाया। यही कारण था कि रानी के मन में एक क्षोभ था कि उनके स्वामी का कृष्ण नाम में कोई प्रेम ही नहीं है। लेकिन रानी राजा को इस विषय में कभी कुछ न कहती। भगवान के समक्ष उनके अन्त:करण में सर्वदा एक ही प्रार्थना चलती कि राजा कृष्णप्रेमी हो जाएं। लेकिन राजा यथार्थ रूप में हृदय से परम कृष्ण भक्त थे। उनके मतानुसार कृष्ण अंतर्लोक की परम सम्पदा है। उनके लिए बाहर में भक्ति का ढोल पीटना एवं प्रदर्शन के आयोजन का प्रयोजन क्या है? जिसका अंत:करण कृष्णभक्ति में सराबोर हो तो क्या वाह्यरूप में किसी दिन भी कृष्ण भक्ति उजागर न होगी?

एक दिन रात्रि के अन्तिम प्रहर में गभीर निद्रा के उपरांत तंद्रावस्था के उस विवश एवं असावधान मुहूर्त में राजा चुटकी बजाते हुए हठात् ''कृष्ण-कृष्ण'' बोलते हुए उठ बैठे। असतर्क निद्रा के आवेश में राजा जिस प्रकार अपने मुख से कृष्णनाम लेते हुए उठ बैठे, इस संबंध में वे सम्पूर्णतया अचेतन थे। यद्यपि वे सचेतन नहीं थे परन्तु समीप में सोयी हुई रानी जाग्रत थी। स्वामी के मुख से कृष्णनाम सुनकर रानी की खुशी का ठिकाना नहीं रहा। मन ही मन उन्हें खुब अनुताप हुआ क्योंकि वे अपने स्वामी के संबंध में अपने अन्तर में कितनी विरूप धारणा का पोषण कर रही थी। जो भी हो रानी ने प्रायश्चित्त स्वरूप राजा द्वारा जिस दिन कृष्णनाम उच्चारित किया गया था उस दिन को एक वृहत् उत्सव के रूप में विशेष भाव से आयोजित किया। हठात् असमय धूमधाम से हो रहे उत्सव को देखकर राजा ने रानी से जिज्ञासा किया - ''क्या बात है? आज तुम लोगों का कौन सा उत्सव था?'' रानी ने कहा – ''नहीं जानते हो? तुम ही तो आज इस उत्सव के मूल उत्स हो। तुम्हारा हृदय जो कृष्णभक्ति से भरपूर है इस बात का तो घुणाक्षर की तरह तुमने किसी दिन भी आभास नहीं होने दिया। आज प्रात: हठात् तुम्हारे मुख से कृष्ण-नाम सुनकर मन आनन्द से झूम उठा, अत: उसी के उपलक्ष्य में इस कृष्ण उत्सव का आयोजन हुआ है।''

यह सुनते ही राजा और स्थिर न रह सके। वे केवल यही सोच रहे थे कि वे अपने प्राणाधार कृष्ण को अंतर्लोक से किसी दिन भी वाह्य रूप में प्रदर्शित नहीं करेंगे इस संबंध में वे मन ही मन में दृढ़ प्रतिज्ञ और संकल्पबद्ध थे। उन्हें ऐसा प्रतीत होने लगा जैसे कृष्ण ने अन्तर्लोक से बाहर निकलकर उनका सम्पूर्णभाव से परित्याग कर दिया है। राजा

हाहाकार कर उठे; समग्र दिशाएँ एवं मण्डल जैसे उनके सामने घुमने लगे एवं उनका शरीर अनियंत्रित हो गया तथा अकस्मात् राजा मूर्छित हो गए। वह मूर्छा ऐसी दीर्घ स्थायी हुई कि राजा की देह में संज्ञा पुनः प्रत्यावृत न हुई। यह दृश्य देखकर रानी ने असह्य वेदना से कातर होकर कृष्ण के श्रीचरणों में बारंबार प्रणाम निवेदन किया तथा उनके चक्षुओं से निकली अश्रुधारा द्वारा प्रार्थना से समग्र वक्षःस्थल आप्लुत हो गया। रानी को अफसोस सिर्फ स्वामी के चले जाने का नहीं था, बल्कि ऐसे कृष्ण-प्रेमानुरागी स्वामी को उनके जीवन काल में न पहचानने का था।

राजा और रानी दोनों के ही शोक के केन्द्रबिन्दु हुए स्वयं श्रीकृष्ण। अतः सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान भगवान को ही इस समस्या के समाधान के लिए प्रस्तुत होना पड़ा। भक्त की पुकार का भगवान ने प्रत्युत्तर दिया। उनकी ही इच्छा से राजा की मृत्यु के लक्षण धीरे-धीरे निवृत होने लगे। तत्पश्चात् राजा की संज्ञा हठात् लौट आयी लेकिन मूर्च्छा न टूटी क्योंकि उस समय राजा दर्शन कर रहे थे नवधनश्याम श्रीकृष्ण का, जो उनके सम्मुख दंडायमान थे। यह दृश्य अन्तर्हित होते ही राजा ने रानी से कहा - ''तुम लोगों ने मेरी निद्रा क्यों भंग की? मैं निद्रावस्था में प्राणविमोहनकारी श्यामसुन्दर का प्रत्यक्ष दर्शन कर रहा था।''

रानी ने कहा, ''तुम्हारे अंतर में इतना प्रगाढ़ कृष्ण-प्रेम जिसे मैं आज तक भी समझ नहीं पायी राजा। मैंने तुम्हें गलत समझा, अतएव तुम मुझे क्षमा करो।''

तत्पश्चात् सम्पूर्ण राज्य में महासमारोह के साथ कृष्ण-उत्सव का आयोजन किया गया।

('भक्तमाल' से संगृहीत कहानी)

हिन्दी अनुवाद–मातृचरणाश्रित डा. चन्द्र पारेख